THE TIMES OF INDIA

Date:21-06-24

The Tibet Play

India must prepare for a post-Dalai Lama scenario. Its policy should always aim for leverage over China.

TOI Editorials

A bipartisan US delegation meeting the Dalai Lama in Dharamshala has brought back the Tibet issue to the front burner. Of course, China has objected to the visit. The delegation included former US House speaker Nancy Pelosi, who had also visited Taiwan in 2022 despite Beijing's protests. Biden is going to soon sign the Resolve Tibet Act, which calls on Beijing to negotiate with the Dalai Lama or his representatives. This puts India, the host country of the Tibetan govt-in-exile, in a decision spot.

Question of future | Given the Dalai Lama's advanced age, the matter of his inevitable succession assumes salience. The US delegation affirmed that Washington would not allow Beijing to interfere with Dalai Lama's succession. Meaning, it will not accept a Beijing-appointed Dalai Lama. India, however, has remained relatively quiet on the matter. But its opinion will matter for the future of the Tibetan movement. It must start thinking now.

Moral imperative | India is expected to continue its support to the Tibetan govt-in-exile and the more than 70,000 Tibetan refugees in the country even after this Dalai Lama. Tibetan refugees also constitute one of the most successful examples of rehabilitation in modern history. At a time China has even stopped referring to Tibet by name – using the Chinese term 'Xizang' instead – it's India that has emerged as the cultural home of Tibetans.

Strategic imperative | Plus, India-China relations are at a major low. China has repeatedly intruded into and occupied Indian territory. Both armies are eyeball-to-eyeball in the higher Himalayas. India has stopped referring to the 'One China' policy for years. And since China doesn't see India as an equal and treats the border dispute as a convenient political tool, New Delhi should have no hesitation in backing the Tibetan cause. India needs leverage. And the Tibet issue is a big one.

दैनिक भास्कर

Date:21-06-24

एमएसपी से क्या सच में किसानों की आय बढ़ेगी?

संपादकीय

मोदी-3 कैबिनेट का पहला अहम फैसला आगामी खरीफ की 14 फसलों की एमएसपी के रूप में आया। फैसले के बाद यह बताने की होड़ लग गई कि मोदी कैसे वादा निभाते हैं, कैसे किसानों का भाग्य इस एमएसपी से बदल जाएगा। पर अति उत्साह में भाजपा भूल गई कि जिस 2013-14 के मुकाबले आज की एमएसपी की तुलना सोशल मीडिया में की जा रही है, उसमें अधिकांश मुख्य फसल जैसे धान, दलहन और तिलहन पर आज दस साल बाद भी दोगुनी से कम एमएसपी है। किसानों की आय वर्ष 2022 तक दोगुनी करने का वादा किया गया था। अगर दस साल में भी कृषि उत्पाद का एमएसपी उस मुकाम तक नहीं पहुंचा तो किसानों की असली हालत क्या होगी ? इसके अलावा सीएसीपी रिपोर्ट बताती है कि पिछले एक साल में सम्मिलित लागत मूल्य सूचकांक 6.1% बढ़ा है। अगर सरकार इस वृद्धि को भी मद्देनजर रखकर मूल्य निर्धारण करती तो औसत वृद्धि 9.15% की होनी चाहिए थी। धान की एमएसपी मात्र 5.3% बढ़ी है। केवल नाइजर सीड और रागी दो ऐसे उत्पाद हैं जिनका एमएसपी 9.15% से ऊपर है। इसमें से नाइजर सीड (तिल की एक किस्म) भारत में बेहद कम बोई जाती है। यहां तक कि बाजरा पर सबसे कम मात्र 5% की वृद्धि की गई है। क्या ऐसी वृद्धि से किसान कृषि के प्रति उत्साहित होगा?

दैनिक जागरण

Date:21-06-24

यूरोप की जरूरत बना भारत

शिवकांत शर्मा, (लेखक बीबीसी हिंदी के पूर्व संपादक हैं)

कहते हैं कि एक तस्वीर हजार शब्दों के बराबर होती है। बीते दिनों इटली में आयोजित जी-7 शिखर बैठक की सामूहिक तस्वीर पर यही बात लागू होती है। भारत इस समूह का सदस्य नहीं है, फिर भी विश्व की सात बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के इस समूह की शिखर बैठकों में 2019 के बाद से भारत को हर साल आमंत्रित किया जाता है। यह वैश्विक मंच पर उसके बढ़ते कूटनीतिक एवं आर्थिक कद का प्रतीक है। जी-7 की अध्यक्ष और शिखर बैठक की मेजबान इटली की प्रधानमंत्री जार्जिया मेलोनी ने भारत के अलावा ब्राजील, सऊदी अरब, तुर्की और यूएई जैसे 11 अन्य देशों को भी बुलाया। भारत के प्रधानमंत्री मोदी को जिस तरह नेताओं की पंक्ति के एकदम बीच में जी-7 के प्रतीक चिह्न के सामने स्थान दिया गया, वह शिखर बैठक में शामिल अन्य देशों की तुलना में भारत की मजबूत आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को भी रेखांकित करता है।

अमेरिका के अलावा जी-7 के सभी देश आर्थिक विकास की धीमी रफ्तार से जूझ रहे हैं। 2008 में आई विश्वव्यापी मंदी के समय तक अमेरिका और यूरोप की आर्थिकी लगभग बराबर थीं, मगर उसके बाद से अमेरिकी अर्थव्यवस्था यूरोप से लगभग दोगुनी हो चुकी है। भारतीय अर्थव्यवस्था तब से करीब 3.5 गुना बढ़ी है। जबकि यूरोप की अर्थव्यवस्था 30 देशों

के विभिन्न कानूनों और लालफीताशाही में उलझी रही। इसके चलते यूरोप प्रति व्यक्ति आय में भी अमेरिका से 25 प्रतिशत पिछड़ गया। बुजुर्ग होती आबादी की देखभाल में बढ़ते खर्च से सरकारों के बजट बिगड़ रहे हैं। कृषि सब्सिडी, श्रम सुधार और सेवा क्षेत्र में प्रवेश जैसी शर्तों पर अड़ियल रवैये के कारण भारत जैसे तेज आर्थिक रफ्तार वाले देशों के साथ भी मुक्त व्यापार समझौते नहीं हो पा रहे। जबकि भारत ने नार्वे, स्विट्जरलैंड, आइसलैंड और लिश्टेंस्टाइन के साथ मुक्त व्यापार समझौता किया है। ये देश यूरोपीय संघ का हिस्सा नहीं हैं।

यूरोप में लोग करों के बढ़ते बोझ और महंगाई से भी परेशान हैं। शरणार्थी और अप्रवासी उनके रोष का निशाना बन रहे हैं। सीरियाई गृहयुद्ध के बाद 2015 में यूरोप को दूसरे विश्व युद्ध के बाद के सबसे गंभीर शरणार्थी संकट का सामना करना पड़ा। सीरिया, कोसोवो, अफगानिस्तान, इराक, पाकिस्तान और लीबिया जैसे देशों के 13 लाख से अधिक शरणार्थी यूरोपीय देशों की सीमाओं पर जमा हो गए। अधिकांश देशों ने उन्हें शरण देने से मना कर दिया। अंत में अधिकांश लोगों को जर्मनी ने शरण दी, जिसके फलस्वरूप उसकी मुस्लिम आबादी 46 लाख का आंकड़ा पार कर कुल जनसंख्या का लगभग छह प्रतिशत हो चुकी है। फ्रांस में भी मुस्लिम आबादी बढ़कर 10 प्रतिशत हो गई है और वह यूरोप का सबसे बड़ी मुस्लिम आबादी वाला देश बन गया है। कड़े सीमा नियंत्रण के बावजूद ब्रिटेन में मुस्लिम आबादी 6.5 प्रतिशत को पार कर गई। इसके चलते यूरोप के कई शहरों में वहां के मूल निवासी अल्पसंख्या में आ गए। इस कारण भी स्थानीय लोगों में रोष पनपने लगा। यही इन दिनों यूरोप में चल रही अप्रवास विरोधी लहर का प्रमुख कारण बना, जिसके चलते ब्रिटेन को यूरोपीय संघ की सदस्यता छोड़नी पड़ी और पिछले सप्ताह यूरोपीय संसद के चुनावों में फ्रांस और जर्मनी जैसे प्रमुख देशों में सत्ताधारी उदारवादी पार्टियों को अप्रवास विरोधी दक्षिणपंथी पार्टियों के हाथों पराजय का मुंह देखना पड़ा।

फ्रांस में राष्ट्रपति मैक्रों की रेनेसां पार्टी को यूरोपीय संसदीय चुनावों में अप्रवासन विरोधी दक्षिणपंथी नेशनल रैली पार्टी से आधे वोट भी नहीं मिले। इसलिए उन्होंने अविश्वास प्रस्तावों से बनने वाले दबाव की प्रतीक्षा न करते हुए संसद को भंग कर दिया और मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर डाली, जो 30 जून को होगा। इस चुनाव में मैक्रों की गठबंधन सरकार की हार लगभग तय मानी जा रही है। यदि ऐसा होता है तो वह नाम मात्र के राष्ट्रपति रह जाएंगे, क्योंकि दक्षिणपंथी नेशनल रैली उनकी घरेलू एवं विदेश नीतियों का विरोध करती है। इसी तरह यूरोपीय चुनावों में जर्मनी के चांसलर ओलाफ शुल्ज के डेमोक्रेटिक गठबंधन की इतनी बुरी हार हुई कि वह तीसरे स्थान पर चला गया। शुल्ज ने संसद भंग करके चुनाव की घोषणा तो नहीं की, लेकिन उनके लिए भी शेष डेढ़ वर्ष के कार्यकाल में अपनी सरकार चला पाना कठिन लग रहा है। ब्रिटेन में चार जुलाई को होने जा रहे आम चुनाव में प्रधानमंत्री सुनक की कंजरवेटिव पार्टी की हालत इतनी पतली है कि एक सर्वेक्षण में तो उसके तीसरे स्थान पर खिसकने के आसार बताए गए हैं।

अमेरिका में अर्थव्यवस्था की स्थिति बढ़िया होने के बावजूद राष्ट्रपति बाइडन का चुनाव जीत पाना कठिन है, क्योंकि अदालतों में दोषी पाए जाने के बाद भी ट्रंप की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। कनाडा में प्रधानमंत्री ट्रूडो के गिरते जनसमर्थन को देखते हुए उनकी सरकार का अगले साल तक चल पाना कठिन है। यही हाल जापान में प्रधानमंत्री फुमियो किशिदा की गठबंधन सरकार का है। कुल मिलाकर जी-7 के सातों नेताओं में से केवल मेजबान इतालवी प्रधानमंत्री मेलोनी का राजनीतिक आधार ही मजबूत है, क्योंकि यूरोपीय चुनावों में उनके गठबंधन की शानदार जीत हुई है। आमंत्रित देशों में भारत के प्रधानमंत्री मोदी अपनी पार्टी का बहुमत खो देने के कारण राजनीतिक रूप से कुछ कमजोर अवश्य पड़े हैं, परंतु उनके गठबंधन के पास पर्याप्त बहुमत है और अर्थव्यवस्था की रफ्तार दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में सबसे तेज है। मेलोनी के साथ उनके संबंध भी मधुर हैं।

चीन से पिछड़कर यूरोप अब दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था रह गया है। इसलिए उसे अपनी विकास दर की रफ्तार बढ़ाने की जरूरत है। भारत को भी अपना माल बेचने के लिए यूरोप जैसे विशाल एवं विकसित बाजार की दरकार है, क्योंकि कोई देश विदेश में माल बेचकर धन कमाए बिना अपने लोगों का जीवनस्तर ऊपर नहीं उठा पाया है। इसलिए भारत को यूरोप के साथ मुक्त व्यापार समझौते की कोशिश करनी चाहिए, जिसकी यूरोप और भारत दोनों को जरूरत है। जी-7 देशों ने भारत-पश्चिम एशिया-यूरोप आर्थिक गलियारे के लिए वित्तीय संसाधन जुटाने और हिंद प्रशांत क्षेत्र की आर्थिक सुरक्षा का संकल्प दोहरा कर इस दिशा में आगे बढ़ने का संकेत दिया।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:21-06-24

भारत में निर्यात बढ़ाने का खाका

अजय श्रीवास्तव, (लेखक ग्लोबल ट्रेड रिसर्च इनीशिएटिव के संस्थापक हैं)

देश का विदेश व्यापार वर्ष 2023-24 में 1.63 लाख करोड़ डॉलर मूल्य का रहा और सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 41 फीसदी था। इससे देश की अर्थव्यवस्था और रोजगार निर्माण में इसकी अहम भूमिका जाहिर होती है। इस क्षेत्र के सामने अहम आंतरिक एवं बाह्य चुनौतियां मौजूद हैं। हम यहां नौ सुझावों की बात करेंगे जो नई सरकार के लिए व्यापार और आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देने में अहम साबित हो सकते हैं।

श्रम आधारित निर्यात को पुनर्जीवन

2015 की तुलना में 2023 में अधिकांश श्रम गहन क्षेत्रों में निर्यात कम हुआ। अहम उत्पाद श्रेणियों में शामिल हैं तैयार वस्त्र, कपड़ा, धागा, फाइबर, कालीन, चमड़े के उत्पाद, जूते-चप्पल, हीरे और सोने के आभूषण आदि। अन्य क्षेत्रों की तुलना में ये क्षेत्र निवेश पर अधिक रोजगार उत्पन्न करते हैं।

बांग्लादेश और वियतनाम ने वस्त्र तैयार करने के लिए आयातित कपड़े पर भरोसा किया और भारत को पीछे छोड़ दिया। इसके लिए उन्होंने बीते दो दशक में विशिष्ट उपाय अपनाए।

कपड़ा क्षेत्र के लिए उत्पादन से संबद्ध प्रोत्साहन (PLI) योजना कामयाब नहीं रही है और उसे बंद करना ही बेहतर होगा। तकनीक कोई मुद्दा नहीं है। सलाहकारों की खुशनुमा भविष्य की रिपोर्ट के बजाय इस क्षेत्र को ईमानदार आकलन की जरूरत है। अगर निर्यात में गिरावट नहीं रुकती है तो हमें इन क्षेत्रों का आयात बढ़ता हुआ नजर आएगा।

सेवा निर्यात में विविधता

देश के सेवा निर्यात क्षेत्र की आय का तीन चौथाई हिस्सा सॉफ्टवेयर और आईटी तथा कारोबारी सेवा क्षेत्र से आता है। इन दोनों क्षेत्रों में भारत की वैश्विक हिस्सेदारी 9 फीसदी है जो काफी अधिक है। वैश्विक सेवा निर्यात में इस श्रेणी की

हिस्सेदारी 36 फीसदी है। इन दोनों के अलावा अन्य सेवाएं वैश्विक निर्यात में 64 फीसदी की हिस्सेदार हैं जहां भारत की हिस्सेदारी महज 1.9 फीसदी है।

भारत की वैश्विक हिस्सेदारी वाली कुछ अन्य सेवाएं हैं परिवहन और यात्रा (2.4 फीसदी), रखरखाव और सुधार कार्य (0.24 फीसदी), बीमा और पेंशन सेवाएं (1.38 फीसदी), वित्तीय सेवाएं (1.30 फीसदी) तथा बौद्धिक संपदा के उपयोग के लिए शुल्क (0.23 फीसदी)। भारत को इन क्षेत्रों में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि सेवा निर्यात में हमारा प्रदर्शन बेहतर हो।

चीन पर अहम निर्भरता में कमी

औद्योगिक वस्तुओं के लिए भारत के औसत वैश्विक आयात में 30 फीसदी चीन से आता है। इसमें दूरसंचार और स्मार्टफोन के कलपुर्जों की हिस्सेदारी 44 फीसदी, लैपटॉप और पीसी की 77.7 फीसदी, डिजिटल मोनोलिथिक इंटीग्रेटेड सर्किट की 26.2 फीसदी, असेंबल्ड फोटोवोल्टिक सेल्स की 65.5 फीसदी, लीथियम ऑयन बैटरी की 75 फीसदी, डाइ अमोनियम फॉस्फेट की 40.9 फीसदी, रेडियो ट्रांसमिशन और टेलीविजन आदि की 68.5 फीसदी तथा ऐंटीबायोटिक्स की 88.4 फीसदी है।

2019 से 2024 तक चीन को भारत का निर्यात करीब 16 अरब डॉलर सालाना पर ठहरा रहा। इस बीच चीन से होने वाला आयात वित्त वर्ष 19 के 70.3 अरब डॉलर से बढ़कर वित्त वर्ष 24 में 101 अरब डॉलर हो गया। अमेरिका और यूरोपीय संघ चीन से होने वाले आयात को कम करने के लिए शुल्क दरें बढ़ा रहे हैं।

ऑस्ट्रेलिया चीन के निवेशकों से कह रहा है कि वे ऑस्ट्रेलिया के दुर्लभ जमीनी संसाधनों के खनन में अपनी हिस्सेदारी छोड़ें क्योंकि यह क्षेत्र पर्यावरण के अनुकूल ऊर्जा और रक्षा क्षेत्र के लिए अहम है।

भारत में चीन से होने वाला आयात बढ़ने की उम्मीद है क्योंकि संयुक्त उपक्रमों अथवा व्यक्तिगत स्तर पर भी चीनी कंपनियां भारत में प्रवेश कर रही हैं। भारत को नए सिरे से आकलन करने की आवश्यकता है। उसे अपने आयात के स्रोतों में विविधता लाने तथा घरेलू उत्पादन क्षमता बढ़ाने की भी जरूरत है।

सुनिश्चित करें कि एफटीए इनवर्टेड ड्यूटी ढांचे में वृद्धि न हो: इनवर्टेड शुल्क ढांचा तब माना जाता है जब तैयार वस्तुओं पर आयात शुल्क कच्चे माल से कम होता है।

उदाहरण के लिए अगर पीतल और उससे तैयार पाइप, दोनों पर 5 फीसदी शुल्क हो तथा मुक्त व्यापार समझौता पाइप पर शुल्क को घटाकर शून्य कर दे तो स्थानीय रूप से उत्पादित पाइप कम प्रतिस्पर्धी रह जाते हैं। कंपनियां सस्ते आयात पर जोर देती हैं और स्थानीय निर्माण प्रभावित होता है।

पहले बजट में ऐसी कमियां दूर कर दी जाती थीं। बहरहाल, बढ़ते मुक्त व्यापार समझौते (FTA) अधिकांश औद्योगिक उत्पादों पर आयात शुल्क को शून्य करके समस्या बढ़ा रहे हैं। गैर एफटीए वाले देशों से कच्चे माल के आयात पर उच्च शुल्क और एफटीए साझेदार से शुल्क मुक्त तैयार वस्तु, स्थानीय खरीद पर आयात को बढ़ावा दे रहे हैं।

एफटीए के प्रदर्शन पर डेटा प्रकाशन

भारत ने 14 व्यापक एफटीए पर हस्ताक्षर किए हैं और उसने छह छोटे प्राथमिकता वाले व्यापार समझौतों पर दस्तखत किया है। सरकार को आंकड़े जारी करने चाहिए ताकि यह देखा जा सके कि क्या एफटीए अपेक्षाओं पर खरे उतरे हैं या फिर सुधार की जरूरत है। इससे निकले सबक भविष्य की वार्ताओं में मदद करेंगे।

यूरोपीय जलवायु नियमन के प्रतिकूल प्रभाव

यूरोपीय संघ के वनों की कटाई के नियम, कार्बन सीमा समायोजन उपाय (सीबीएएम) नियमन, विदेशी सब्सिडी नियमन और जर्मन आपूर्ति श्रृंखला उचित सावधानी अधिनियम असर डालेंगे और देश के निर्यात में अनिश्चितता बढ़ाएंगे। यूरोपीय संघ से आने वाली अपुष्ट खबरों के मुताबिक आधे से कम भारतीय निर्यातकों ने ही सीबीएएम के अनुपालन के आंकड़े संघ के साथ साझा किए हैं।

पूरे क्रियान्वयन के बाद सीबीएएम के कारण भारतीय कंपनियों पर 20-35 फीसदी आयात शुल्क लगेगा। कंपनियों को सभी संयंत्र और उत्पादन सूचनाएं यूरोपीय संघ के साथ साझा करनी होंगी। इसके अलावा कंपनियों को दो उत्पादन लाइन संचालित करनी होंगी ताकि प्रभावी प्रतिस्पर्धा कर सकें: एक, यूरोपीय देशों में निर्यात के लिए महंगे किंतु पर्यावरण के अनुकूल उत्पाद तथा दूसरा, शेष विश्व के लिए मानक उत्पाद। अब वक्त है एक योजना तैयार करने की ताकि यूरोपीय संघ के नियमन का मुकाबला किया जा सके और यूरोपीय संघ से होने वाले आयात पर ऐसे ही नियम लगाए जा सकें।

गुणवत्ता व्यवस्था में सुधार

हॉन्गकॉन्ग, सिंगापुर और अमेरिका ने हाल में भारतीय ब्रांड के मसालों को लेकर जो चिंता जताई है, वह बताती है कि तत्काल कदम उठाने की आवश्यकता है। भारतीय खाद्य एवं कृषि निर्यातकों को अक्सर अमेरिकी और यूरोपीय संघ के इनकार का सामना करना पड़ता है। ऐसा अक्सर कीटनाशकों की मात्रा और अन्य गुणवत्ता कारणों से होता है।

भारत को अपने गुणवत्ता मानकों को अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाना चाहिए ताकि ऐसे नकारे जाने के मामले कम हों, सब्जियों, मसालों और डेरी उत्पादों आदि प्रमुख निर्यात के लिए खेत से लेकर खाने तक ब्लॉकचेन ट्रेसिंग का विस्तार करना चाहिए, उद्योग के साथ परामर्श के बाद गुणवत्ता नियंत्रण आदेश देना चाहिए। भारतीय उत्पादों की वैश्विक स्वीकार्यता को बढ़ावा देने के लिए प्रमुख निर्यात भागीदारों के साथ परस्पर समझौतों पर हस्ताक्षर करना चाहिए।

कारोबारी सुगमता को बढ़ावा

हमें सरकार और कारोबारों के रिश्तों को सरकारी विभागों के चंगुल से निकालकर कारोबारों के अनुरूप करना होगा। फिलहाल निर्यातकों को कई सरकारी विभागों से अलग-अलग निपटना होता है।

उपयोगकर्ताओं के अनुकूल ऑनलाइन राष्ट्रीय व्यापार नेटवर्क कायम करने से कारोबारों के लिए एक ही स्थान पर प्रक्रियाएं पूरी करना आसान होगा। इस बदलाव से एक लाख छोटी कंपनियां एक साल के भीतर निर्यात आरंभ कर सकती हैं।

अन्य निर्यात संवर्धन उपाय

देरी और लागत कम करने के लिए सीमा शुल्क प्रक्रिया को स्वचालित करना होगा। आधुनिक बंदरगाहों में निवेश, किफायती लॉजिस्टिक्स और डिजिटल व्यवस्था अपनानी चाहिए। मौजूदा बाजारों में उच्च मूल्य वाली वस्तुओं का निर्यात, छोटे कारोबारों को वैश्विक पहुंच बनाने में मदद, ऋण तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करना, ई-कॉमर्स निर्यात को बढ़ावा और अहम बाजारों में गैर टैरिफ गतिरोध को समाप्त करना, कुछ और कदम हो सकते हैं।

जानकारों के मुताबिक निर्यात वृद्धि को गति देने के लिए किसी देश को आयात टैरिफ कम करना चाहिए, एफटीए पर हस्ताक्षर करने चाहिए और वैश्विक मूल्य श्रृंखला के साथ एकीकरण करना चाहिए।

बहरहाल यह रणनीति केवल तभी कारगर होगी जब हम पहले लागत कम करेंगे और कारोबारी माहौल में सुधार लाएंगे। बिना कारोबारी सुगमता में सुधार किए शुल्क दरों में कमी करने से आयात बढ़ेगा और स्थानीय विनिर्माण और रोजगार की जगह लेगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:21-06-24

कनाडा का खतरनाक खेल

संपादकीय

खालिस्तानी आतंकवादी हरदीप सिंह निज्जर भारत और कनाडा के संबंधों को प्रभावित कर रहा है। कनाडा और वहां के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो के लिए आतंकी निज्जर नागरिक स्वतंत्रता का हीरो बन गया है। मंगलवार को कनाडाई संसद के निचले सदन हाउस ऑफ कॉमन्स में मौन रखकर निज्जर की पहली बरसी पर उसे श्रद्धांजलि दी गई। पिछले वर्ष 18 जून को ब्रिटिश कोलंबिया के सरे में एक गुरुद्वारे के बाहर उसकी हत्या कर दी गई। थी। प्रधानमंत्री ट्रूडो ने पिछले वर्ष सितंबर में अप्रत्याशित रूप से यह दावा किया था कि निज्जर की हत्या में भारतीय अधिकारियों का हाथ है। वास्तव में कनाडा में गैंगवार के चलते जो हत्याएं हुई हैं उनके लिए वह इन गिरोहों के खिलाफ कार्रवाई करने की बजाय भारतीय एजेंसियों को ही ने कठघरे में खड़ा कर रहे हैं। 'फाइव आईज' का प्रमुख देश कनाडा है। इसमें कनाडा के अलावा अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन और न्यूजीलैंड आते हैं। यह एक तरह से नस्लवादी गुट है और इनकी घरेलू और विदेश नीति एक जैसी है। निज्जर की बरसी पर कनाडाई संसद ने जिस तरह मौन रखकर उसे श्रद्धांजलि दी है उसका भारत ने माकूल जवाब देने का फैसला किया है। बैंकुवर स्थित भारतीय महावाणिज्य दूतावास कनिष्क विमान धमाके में मरने वालों के लिए 23 जून को श्रद्धांजलि सभा आयोजित करेगा। वास्तव में भारत को पिछले दशकों में अपनाए गए उदासीनता के रवैये की कीमत चुकानी पड़ रही है। उसी समय तत्कालीन भारत सरकार को कनाडा से जवाब-तलब करना चाहिए था। उस समय ट्रूडो के पिता कनाडा के प्रधानमंत्री थे, जिन पर कोई कारगर कार्रवाई नहीं की गई। इसका एक कारण यह था कि मृतकों में

अधिकांश भारतीय मूल के थे। कालांतर में कनाडा में बड़ी संख्या में पंजाबी मूल के लोग बसने लगे। वहां खालिस्तानी अलगाववादी आंदोलन ने जड़ जमानी शुरू कर दी। आज इसका व्यापक नेटवर्क खड़ा हो गया है। ऐसी ही स्थिति अमेरिका, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया में भी बनती जा रही है। इन देशों की सरकार और खुफिया एजेंसियां खालिस्तानी तत्वों को भारत के खिलाफ इस्तेमाल कर रही हैं। लेकिन खालिस्तान समर्थकों का तुष्टिकरण न केवल भारत-कनाडा के रिश्तों को नुकसान पहुंचाएगा बल्कि 'फाइव आईज' देशों की आतंकवाद के प्रति संघर्ष की प्रतिबद्धता पर भी सवाल खड़े करेगा।

Date:21-06-24

ज्ञान का गौरव

संपादकीय

नालंदा विश्वविद्यालय का नया परिसर विश्व को बतायेगा कि जो राष्ट्र मजबूत मानवीय मूल्यों पर खड़े होते हैं, वे इतिहास को पुनर्जीवित करके बेहतर भविष्य की नींव रखना जानते हैं । प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने नए परिसर का उद्घाटन करते हुए ये बातें कही। नालंदा उस सत्य का उद्घोष है कि आग की लपटों में पुस्तकें भले जल जाएं, लेकिन आग की लपटें ज्ञान को नहीं मिटा सकतीं। नालंदा के विध्वंस ने भारत को अंधकार में भर दिया था। उन्होंने कहा अब इसकी पुनर्स्थापना भारत के स्वर्णिम युग की शुरुआत करने जा रही है। छात्रों के विदेशों में जाकर पढ़ाई करने को उन्होंने नालंदा व विक्रमशिला में पढ़ाई करने से जोड़ते हुए कहा, तब भारत शिक्षा में आगे था और आर्थिक सामर्थ्य भी ऊंचाई पर थी। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के अनुसार वहां सत्रह देशों के चार सौ विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं। नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गप्तवंश के शासक कुमारगुप्त प्रथम द्वारा 450 से 470 ईस्वी के बीच की गई थी। यह मगध में प्राचीन बौद्ध मठ था, जिसे बारहवीं शताब्दी का अंत में आक्रमणकारी खिलजी ने नष्ट कर दिया व वहां के पुस्तकालय को बुरी तरह जला दिया था। इस नए विश्वविद्यालय को राष्ट्रीय महत्त्व के अंतरराष्ट्रीय संस्थान के रूप में 2014 में पंद्रह छात्रों के साथ पुनः चालू किया गया। नालंदा को देश का पहला विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त है परंतु हैरत की बात तो यह है कि शासकों ने कभी इसे पुनर्स्थापित करने में कोई उत्साह नहीं दिखाया। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय शिक्षा प्रणाली की दुनिया में तूती बोलती थी। तक्षशिला को दुनिया का पहला विश्वविद्यालय होने का गौरव यूं ही नहीं प्राप्त है। हालांकि विभाजन के बाद तक्षशिला पाकिस्तान के हिस्से आ गया। ऑक्सफोर्ड व कैम्ब्रिज विश्वविद्यायलों जैसी प्रतिष्ठा हासिल करने के लिए भले ही हमें कड़े प्रयास करने होंगे, मगर अपनी विरासत और रुतबे को दुनिया के समक्ष हासिल करने का हौसला हमें बना कर रखना होगा। तभी हम इनकी बराबरी कर पाएंगे। यदि सरकार अत्याधुनिक सुविधाओं वाले इस नामदार शिक्षण संस्थान को प्राथमिकता देते हुए बेहतरीन बनाए रखने में सफल होती है तो देश अपना प्राचीन गौरव पुनः प्राप्त कर सकता है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:21-06-24

आरक्षण और अदालत

संपादकीय

न्यायालय ने फिर एक बार आरक्षण की सीमा के प्रति अपना जो फैसला सुनाया है, उस पर बहस ही नहीं, बल्कि राजनीति भी तेज हो सकती है। यह एक बड़ा बदलाव है कि पटना उच्च न्यायालय ने गुरुवार को राज्य में सरकारी नौकरियों और उच्च शिक्षण संस्थानों में पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण सीमा 50 प्रतिशत से बढ़ाकर 65 प्रतिशत करने की बिहार सरकार की अधिसूचना को रद्द कर दिया है। अदालत ने आरक्षण में वृद्धि की सांविधानिकता को चुनौती देने वाली याचिकाओं की सुनवाई करते हुए यह फैसला सुनाया है। याचिकाकर्ताओं का तर्क था कि राज्य सरकार द्वारा आरक्षण सीमा में की गई वृद्धि उसके विधायी अधिकार से अधिक है। पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के विनोद चंद्रन की अध्यक्षता वाली खंडपीठ ने बिहार सरकार को फिर सोचने और नए कदम उठाने के लिए प्रेरित किया है। अदालत दृढ़ है कि कुल आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

गौरतलब है कि पिछले नवंबर में बिहार सरकार ने दो आरक्षण विधेयकों के लिए एक गजट अधिसूचना जारी की थी। एक अधिसूचना से सरकारी सेवाओं में रिक्तियों को भरने के लिए आरक्षण कोटा को 50 प्रतिशत से बढ़ाकर 65 प्रतिशत कर दिया गया। ठीक ऐसी ही बढ़ोतरी एससी, एसटी, ईबीसी और ओबीसी के लिए शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के लिए की गई। इसके अलावा, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (ईडब्ल्यूएस) के लिए अतिरिक्त 10 प्रतिशत आरक्षण को मिला दें. तो बिहार में कुल आरक्षण की सीमा 75 प्रतिशत तक पहुंच जाती । हालांकि, अब बिहार सरकार को परेशानी उठानी पड़ेगी, ज्यादा आरक्षण देने की उसकी कोशिशों पर अंकुश लग गया है। एक छोटी सी जात ऐसी है, जो आरक्षण या आरक्षण की सीमा बढ़ाने के पक्ष में नहीं है, पर जिस हिसाब से लोगों की महत्वाकांक्षा और जरूरतें बढ़ी हैं, उस हिसाब से आरक्षण की सीमा बढ़ाना ज्यादातर राज्य सरकारों के लिए मजबूरी बनता जा रहा है। अनेक राज्यों में आरक्षण की नई मांग हो रही है। विरोध-प्रदर्शन तक किए जा रहे हैं, अतः आरक्षण की राजनीति करने वालों के लिए यह समय अनुकूल है, पर जरूरत राजनीति से ऊपर उठकर देखने की है।

दरअसल, आरक्षण के इस पूरे विवाद को विस्तार से समझने और सुलझाने की जरूरत है। न्याय की दहलीज पर आरक्षण के कुछ फैसले बार-बार ठिठक क्यों जाते हैं ? बिहार, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में आरक्षण की सीमा बढ़ाने में समस्या है, पर तमिलनाडु में सीमा पार जाकर आरक्षण दिया जा रहा है। आरक्षण जरूर होना चाहिए और उसमें एकरूपता भी होनी चाहिए। राज्यों में बहुत अलग-अलग आरक्षण सीमा उचित नहीं है। जहां तक संविधान में समानता के मौलिक अधिकार के उल्लंघन का प्रश्न है, तो उसे आरक्षण के संदर्भ में नहीं उठाना चाहिए। जहां भी जरूरत है, आरक्षण जरूर मिले, पर उसके नियमों में एकरूपता हो । परिस्थिति विशेष में इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ के मामले में 50 प्रतिशत की अधिकतम आरक्षण सीमा तय की गई थी, पर अब उससे आगे बढ़ने की जरूरत है। अगर राज्य सरकारों को आरक्षण बढ़ाने का अधिकार नहीं है, तो केंद्र सरकार ही आगे बढ़कर जरूरी कानूनों में संशोधन करे, ताकि अदालतों में आरक्षण की सीमा पर सवाल की नौबत न आए।